रस विलास

डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

कविवर चैनराय रीति–परम्परा के ऐसे कवि और रसनिरूपक आचार्य हैं जिनकी रचना की बारीकियों को समझने का प्रयास हिन्दी के मनीषियों ने नहीं किया। उनकी यह कृति शृंगार के भेदों और उससे सम्बद्ध सभी विषयों का सांगोपांग निरूपण करने में पूर्णतया सक्षम हैं।

शृंगारिक काव्य–परम्परा के अन्तर्गत निश्चय ही चैनराय की यह कृति मतिराम के 'रसराज' देव के 'रस विलास' सोमनाथ के 'शृंगार विलास', पद्माकर के 'जगद्विनोद', बेनीप्रवीन के 'नवरस तरंग' तथा भिखारीदास के 'शृंगार निर्णय' से किसी भी रूप में कम महत्व की नहीं है।

इसमें चैनराय की रागात्मक दृष्टि का स्वारस्य और संवेदनशीलता का स्फुरण लोकतात्त्विक रूपों में व्यक्त हुआ है। पद्माकर की चित्रात्मक योजना और बिम्बों की संसृष्टि के साथ ही मंडन की लोकतात्विक सरसता एवं बिहारी की ऊहात्मक प्रवृत्तियों के समावेश से इस रचना में पर्याप्त प्रौढ़ता और गहराई आई है।

इस अज्ञात शृंगारिक रचना का हिन्दी–जगत में यथेष्ट सम्मान होगा तथा रसज्ञ पाठकों के मध्य इसे अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रियता प्राप्त होगी।

ISBN-81-8160-067-3

मूल्य : 150.00 रुपये

रस विलास
(चैनराय कृत)

सम्पादक

डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

ISBN 81-8160-067-3

© डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया'
प्रथम संस्करण : 2008

प्रकाशक :
सार्थक प्रकाशन
100ए, गौतम नगर,
नई दिल्ली–110 049
दूरभाष : 2656 7317

लेजर–टाइपसैटिंग :
मानक ग्राफिक्स
आर–178, वाणी विहार
उत्तम नगर,
नई दिल्ली–110059

मुद्रक :
बालाजी आफसैट
एम–28, नवीन शाहदरा
दिल्ली–110 032

मूल्य : एक सौ पचास रूपये

RAS VILAS (CHAINRAI KRIT)
by *Dr. Ganga Prasad Gupt Barsaiyan*

Price : Rs. 150.00

अन्तर्भाव

प्राचीन ग्रंथों के प्रति मेरा आकर्षण प्रारंभ से रहा है। जब भी मैं दूसरों के पास हाथ से बने कागज पर हस्तलिखित ग्रंथ देखता अथवा कभी–कभी भोजपत्रों को लिखा देखता तो मेरे मन में उसे प्राप्त करने की लालसा जागती। मेरे घर में भी भोजपत्र थे। उन्हें पुस्तकों में बड़ी श्रद्धा से रखते थे। मान्यता थी कि पुस्तक या बस्ते में भोजपत्र रखना शुभ होता है और विद्या जल्दी आती है। फिर, एक दो अवसर ऐसे भी आये जब मैंने गांव में ही पुरानी पुस्तकों को गला–कूटकर टोकनी बनते भी देखा और कुछ लिखे हुए पुराने कागजातों के एक दो बस्ते कुआ और तालाब में तिरोहित होते भी देखा। न जाने उनमें कौन सी साहित्यिक ऐतिहासिक सम्पदा रही होगी। तब कोई ज्ञान नहीं था। आज भी वे ग्रंथ सर्वथा अज्ञात हैं। इस प्रकार अज्ञानतावश न जाने कितनी ही पुरा सम्पदायें युगों से नष्ट होती रही हैं।

अज्ञानता में हुए अपराध की बजाय सज्ञान अपराध अधिक गंभीर और पाप की श्रेणी तक घातक होता है। आज की प्राचीन सम्पदा के प्रति हम कितने गंभीर और सजग हैं, यह किसी से छिपा नहीं। शिक्षा और ज्ञान के विकास के बावजूद हम उनके प्रति उतने जिम्मेदार नहीं हुए जितनी स्वतंत्र देश के समझदार नागरिकों से अपेक्षा की जाती है। देश के दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी अमूल्य दुर्लभ साहित्यिक सम्पदा बिखरी हुई है। उन्हें खोजने, संग्रहित–सुरक्षित कर सम्पादित–प्रकाशित करने की कोई लोकप्रिय कारगर योजना कार्यान्वित नहीं की गई। उलटे कतिपय स्वार्थी लोगों ने एक भ्रम अवश्य फैला दिया कि हर एक प्राचीन पांडुलिपि अमूल्य होती है। उसे किसी को देना नहीं चाहिए। यहां तक कि बताना भी नहीं चाहिए। इसका बड़ा दुष्प्रभाव हुआ। जानकारी के अभाव और विश्वास के लांछित होने का यही कुपरिणाम है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, तथा राजस्थान की कई संस्थाओं ने साहित्य की प्राचीन सम्पदाओं को संग्रहीत कर सार्वजनिक करने का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है किन्तु अर्थ और स्वार्थ प्रधान युग ने इन संस्थाओं की व्यवस्था को भी प्रभावित किया है। जिस गति और समर्पित साहित्य–निष्ठा से प्रारंभ में कार्य किया गया वह गति बाद में न रहकर व्यावसायिक रूप में बदल गई। खोज कार्य में जुटे कार्यकर्ताओं को भी अपेक्षित सुविधायें नहीं दी गईं।

श्री रघुनाथ शास्त्री और श्री उदयशंकर दुबे को मैंने स्वयं देखा है। शास्त्री जी तो कई बार फटे कपड़े पहनकर भूखे रहकर भी काम करते रहे। फलतः पुराने अनुसंधान कर्ता उदासीन हो गए और नये जुड़ नहीं पाये।

एक बात और भी, प्राचीन साहित्य के प्रति जितना लगाव पहले था, वह धीरे–धीरे खत्म हो गया। नये के प्रति आसक्ति बढ़ती गई। फिर तो लोग यहां तक कहने लगे कि अतीत जीवी होकर खंडहर खोदने से क्या लाभ। नया करना ही युग की मांग है। मैंने इस दिशा में जब कार्य, प्रारंभ किया तो यही सब अनुभव हुआ। अनुभवी और वरिष्ठ विद्वानों ने भी बहुत प्रोत्साहित नहीं किया। कुछ लोगों ने सलाह दी कि मौलिक लिखो तो मान्यता मिलेगी। दूसरों की कृतियों का सम्पादन मौलिक की बराबरी नहीं कर सकता। मैं भी एक सीमा तक इससे सहमत हूँ किन्तु सर्वथा अज्ञात, अप्रकाशित प्राचीन महत्वपूर्ण कृतियों का सम्पादन–प्रकाशन किसी मौलिक सृजन से कम नहीं है – ऐसी मेरी दृढ़ निजी मान्यता है। यदि रामचरित मानस, रामचन्द्रिका, तथा बिहारी सतसई जैसी लोकप्रिय अनेक कृतियां इसी प्रकार अज्ञात रहकर नष्ट हो जातीं तो साहित्य और समाज का कितना अहित होता, इसकी कल्पना की जा सकती है। अर्थ और राजनीति के प्रभाव ने आज साहित्य की महत्ता की भले ही उपेक्षा की हो पर उसकी कालजयी शक्ति को कोई समाप्त नहीं कर सकता।

प्राचीन पांडुलिपियों के प्रकाशन की समस्या बड़ी जटिल है। जब साहित्य और साहित्यकार उपयोगितावादी दृष्टिकोण अपनाकर कम से कम समय और लागत से अधिकतम यश और अर्थ प्राप्त करने के लिए येन केन प्रकरेण प्रयत्नशील हों तब हम व्यावसायिक जीवन जीने वाले प्रकाशकों से किसी उदार साहित्य सेवा की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं। यह सबसे बड़ा कारण है पांडुलिपियों के अप्रकाशित रहने का। बुन्देलखण्ड पांडुलिपियों की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है किन्तु प्रकाशन की दृष्टि से सर्वाधिक दरिद्र। यहां की प्रतिभायें साधनों के अभाव के ताप में युगों से झुलसती रही हैं।

सागर विश्वविद्यालय के तत्कालीन आचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष तथा जाने माने विद्वान डॉक्टर कांतिकुमार जैन 'ईसुरी' पत्रिका का बुन्देली पीठ से अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री के साथ सफलतापूर्वक सम्पादन प्रकाशन कर रहे थे। मैंने उस समय उन्हें दो पांडुलिपियों के प्रकाशन का सुझाव दिया – (१) विक्रम कवि रचित सुदामा चरित और (२) चैनदास का रस विलास। विक्रम कवि का सुदामा चरित बुन्देली भाषा संस्कृति से सम्प्रक्त हिन्दी का प्रगतिशील विचारों से युक्त प्राचीनतम सुदामा चरित है जो अभी तब सर्वथा अज्ञात रहा है। बिहार के डॉ. सियाराम तिवारी ने हिन्दी की सुदामा चरित परम्परा पर शोध कार्य किया है, पर उसमें विक्रम कवि की रचना का उल्लेख नहीं है। जब मैंने विक्रम की

कृति के बारे में जानकारी दी तो उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया कि उन्हें उसका कोई पता नहीं था। बाद में डॉ. जैन ने उसे सम्पादित अंशों को छोड़कर मूलरूप में 'ईसुरी' में सन् १९८६ में प्रकाशित किया और सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद ने उसकी कुछ अतिरिक्त प्रतियां ग्रंथ रूप में प्रकाशित कर कल्याणकारी कार्य किया था। लगभग ४०० वर्ष प्राचीन कृति (सं. १६६४ की) (संवत सोरा से सहस चौसट वर्ष विचार) प्रकाशित होकर ग्रंथाकार साहित्य–जगत के सामने आई। भले ही उसमें त्रुटियां हों। यह पांडुलिपि मुझे अपने झांसी के पी-एच.डी. के शोध छात्र स्व. श्री पांडेय से प्राप्त हुई थी जो अब इस संसार में नहीं हैं। इसी प्रकार भारत वर्ष भर में प्रख्यात लोक काव्य आल्हा से संबंधित ज्ञानी कवि की एक प्राचीन पांडुलिपि "वीर विलास" नाम से मुझे प्राप्त हुई। उसके बारे में देश के प्रमुख विद्वानों, संग्रहालयाध्याक्षों तथा अनुसंधान कर्ताओं से पत्राचार किया। पता चला कि वह सर्वथा अप्रकाशित है और उसकी मात्र दो प्रतियां उपलब्ध हैं। एक इंडिया आफिस लाइब्रेरी में, दूसरी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के संग्रहालय में और तीसरी मेरे पास। यह कृति ३०० वर्ष पुरानी संवत् १७५८ की है (सत्रा सै अट्ठावन ज्ञानी करयो प्रकाश) अभी तक आल्हा संबंधी कोई भी संकलित कृति १७५ वर्ष से अधिक प्राचीन उपलब्ध नहीं थी। इसमें एक नई बात यह भी है कि यह आल्हा छंद में नहीं लिखी गई तथा बुन्देली भाषा का पर्याप्त प्रभाव है। इससे लगता है कि आल्हा छंद से इतर भी आल्हा संबंधी रचनायें हुईं। इसके प्रकाशन में जब किसी संस्थान या विद्वान ने सहयोग नहीं किया तब दिल्ली के वाणी प्रकाशन ने सहयोग कर इसे सन् १९९२ में ग्रंथाकार प्रकाशित कर साहित्य–समाज को एक महत्वपूर्ण कृति सौंपी। इस कृति का भी उल्लेख किसी प्राचीन इतिहास ग्रंथों में नहीं है। प्राचीन साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वान डॉ. राजमल वोरा ने 'हिन्दी वीर काव्य' पर ऐतिहासिक कार्य किया है। जब मैंने उन्हें 'वीर विलास' की जानकारी दी तो उन्होंने खेद व्यक्त करते हुए लिखा था कि यदि इस कृति की कहीं से भी उन्हें जानकारी होती तो वे अपनी पुस्तक में इसका उल्लेख कर प्रसन्नता का अनुभव करते। उन्होंने इस कृति की पर्याप्त सराहना भी की है।

अब "रस विलास" की बात। २२५ वर्ष पुरानी चैनदास की यह कृति नायिका भेद से संबंधित है। जब मुझे मिली तो मैंने उसकी प्रति टाइप करवा ली थी। कई बार इसके प्रकाशन का प्रयास किया, पर असफल रहा। बार–बार मुझे लगता था कि चौकीनवीस जैसे छोटे पद पर कार्यरत कर्मचारी की असाधारण सर्जना–प्रतिभा का प्रमाण है उनकी यह कृति। यदि प्रकाशित हो जावे तो कृति एवं कृतिकार को तो प्रकाश मिलेगा ही, साहित्य–जगत में भी अभिवृद्धि होगी। जब सम्पादन का विचार किया तो पांडुलिपि के मालिक ने हाथ

ऊंचे कर दिये। तमाम प्रयास के बाद भी मूल पांडुलिपि नहीं मिली। कारण वही था जो मैंने पूर्व में उल्लेख किया है। कई वर्ष खोज करने के बाद भी इसकी दूसरी किसी प्रति का पता नहीं चला। न विद्वानों की जानकारी में और संग्रहालयों में। इतिहास–ग्रंथों में भी कोई उल्लेख नहीं। अभी भी ऐसे बहुत से अभागे रचनाकार हैं। मैंने स्वयं बुन्देलखण्ड के पचासों अज्ञात रचनाकार खोज निकाले हैं उनमें से कुछ कृतिकारों के ग्रंथों की संख्या दो से तीन दर्जन तक है। अनेक महाकाव्य हैं उनके। उनके प्रकाशन से कई स्थापित मान्यतायें भी बदल सकती हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की दिवरणिका में जिन "वीर विलास" नामक कृतियों का उल्लेख है उसमें चैनदास का नाम नहीं है। प्राचीन संग्रह 'विद्वन्मोद् तरंगिणी, दिग्विजय भूषण आदि में कुछ छंदों के साथ नामोल्लेख मात्र है। कृति की भाषा, शिल्प, कल्पनायें तथा भाव–संयोजन उच्चकोटि का है। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि इसका प्रकाशन हो।

डॉ. किशोरी लाल (इलाहाबाद) और श्री उदयशंकर दुबे दोनों महानुभाव ऐसे कार्यों में मेरी बड़ी उदारता और आत्मीयता से मदद करते रहे हैं। चर्चा करने पर उन्होंने आश्वासन दिया कि इसके संपादन–प्रकाशन में वे भरपूर मदद करेंगे। उस दिशा में प्रयास किये गए। जब अनुकूल समय आता है तब सुयोग जुड़ जाते हैं। सार्थक प्रकाशन, दिल्ली से सम्पर्क हुआ। डॉ. कृष्णदेव शर्मा इसके प्रकाशनार्थ सहमत हुए और आज एक बहुप्रतीक्षित महत्वपूर्ण अप्रकाशित प्राचीन कृति साहित्य जगत के सामने है। श्री शर्मा जी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने इसे अव्यावसायिक भाव से प्रकाशित किया।

इसके संपादन का बहुत कुछ श्रेय डॉ. किशोरी लाल जी व श्री उदयशंकर दुबे को है। उन्होंने इसका दायित्व अपने ऊपर लिया और ईमानदारी से निभाया। यदि वे साथ न देते तो यह कार्य संभव नहीं था। योजना थी कि इसे सटीक सम्पादित किया जाता, पर यह संभव न हो सका। फिर भी इस बात का मुझे पूरा संतोष है कि एक विलुप्तप्राय कृति पुनर्जीवित होकर सबके सामने है। आगे का कार्य आगे आने वाले साथी करेंगे।

विद्वत्जन इसके गुण–दोषों का परीक्षण करेंगे और लुप्तप्राय साहित्य सम्पदा को उजागर करने की कोई सुनियोजित योजना बनायेंगे, ऐसी मेरी विनम्र प्रार्थना और आकांक्षा है। अंत में कृतिकार श्री चैनदास का स्मरण करते हुए अज्ञानतावश हुई त्रुटियों के लिए क्षमा चाहता हूँ।

- **डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'**
१२, एम.आई.जी., चौबे कालोनी
छतरपुर (म.प्र.) फोन २४१०२४ (०७६८२)
मो. ९४२५३७६४१३

डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया''

जन्म : 6 फरवरी 1937

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.

सेवा : म.प्र. के शासकीय महाविद्यालयों में व्याख्याता, प्राध्यापक, प्राचार्य, स्नातकोत्तर प्राचार्य पद से 31-12-96 को सेवानिवृत्त।

निवास : एम.आई.जी.-12, चौबे कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)। फोन : 07682-241024

पुस्तकें : (1) हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार (शोध प्रबन्ध) (2) हिन्दी के प्रमुख एकांकी और एकांकीकार (3) छत्तीसगढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार (4) आधुनिक काव्य : संदर्भ और प्रकृति, (5) रस विलास, (6) वीर विलास, (7) सुदामा चरित, (8) चिन्तन-अनुचिन्तन, (9) बुन्देलखण्ड के अज्ञात रचनाकार (शोधग्रंथ) (10) अरमान वर पाने का (व्यंग्य), (13) तुलसी के तेवर, (14) कर्म और आराधना, (15) रचना से रचना तक, (16) सृजन-विमर्श, (17) समवाय, (18) नारी : एक अध्ययन (19) मेरी जन्मभूमि : मेरा गाँव, (20) कभी-कभी यह भी (काव्य संग्रह), (21) निन्दक नियरे राखिये, (22) अथ काटना कुत्ते का भइया जी को, (23) शब्दों के रंग : बदलते प्रसंग, (24) लोक वाटिका, (25) रूपक और साक्षात्कार आदि।

सम्मान-पुरस्कार : (1) महामहिम उप राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल जी शर्मा द्वारा साहित्य श्री। (2) अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन द्वारा "साहित्य श्री" तथा भारत भाषा भूषण से सम्मानित (3) नागरी प्रचारणी सभा, कानपुर द्वारा—'साहित्य भारती', (4) तुलसी सम्मान व विद्रोही पुरस्कार, (5) ओरछा महोत्सव व केशव जयंती समारोह समिति द्वारा "मित्र मिश्र अलंकरण" एवं पुरस्कार (6) लोक मंगल एवं लोक संस्कृति सेवा निधि ट्रस्ट उरई (उ.प्र.) द्वारा 'गौरी शंकर द्विवेदी शंकर' अलंकरण एवं पुरस्कार, (7) अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

संस्थाओं से सम्बद्ध : (1) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा के कला संकाय के पूर्व डीन, हिन्दी बोर्ड के अध्यक्ष व कार्य परिषद के सदस्य (2) पूर्व डायरेक्टर, महाकवि केशव अनुसन्धान केन्द्र, ओरछा, म.प्र. (3) म.प्र. आंचलिक साहित्यकार परिषद के उपाध्यक्ष (4) बुन्देलखण्ड कला संस्कृति परिषद, छतरपुर के अध्यक्ष (5) अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन, छतरपुर के अध्यक्ष आदि।

सार्थक प्रकाशन
100ए, गौतमनगर, नईदिल्ली-110 049

ISBN 81-8160-067-3
9788181600677

Price: Rs. 150/-